

✽ गुरुभक्ति ✽



जो साधक सच्चे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु को पूर्ण परमात्म स्वरूप जानकर हृदय के पवित्र भाव से उनकी सेवा भक्ति करते हैं वे साधक आत्मज्ञान की प्राप्ति कर पाते हैं। सद्गुरु की जो सेवा करते हैं वे संपूर्ण विश्व की सेवा करते हैं। विनम्रता और प्रेम से, अहंकार और उकताए बिना की गई गुरुदेव की सेवा से साधक के हृदय मंदिर में आत्मज्ञान का प्रकाश जगमगा उठता है। यहाँ हमने ऐसे ही कुछ गुरु भक्त शिष्यों की पावन कथाएँ आपके लिए उपलब्ध कराई हैं। आइए इनका रसपान करें।

● भगवान श्रीराम

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अपने शिक्षागुरु विश्वामित्र के पास बहुत संयम, विनय और विवेक से रहते थे। गुरु की सेवा में सदैव तत्पर रहते थे। उनकी सेवा के विषय में भक्त कवि तुलसीदास ने लिखा है- मुनिवर सयन कीन्हीं तब जाई। लागे चरन चापन दोऊ भाई॥ जिनके चरन सरोरुह लागी। करत विविध जप जोग विरागी॥ बार बार मुनि आज्ञा दीन्हीं। रघुवर जाय सयन तब कीन्हीं॥ गुरु ते पहले जगपति जागे राम सुजान। सीता-स्वयंवर में जब सब राजा धनुष उठाने का एक-एक करके प्रयत्न कर रहे थे तब श्रीराम संयम से बैठे ही रहे। जब गुरु विश्वामित्र की आज्ञा हुई तभी वे खड़े हुए और उन्हें प्रणाम करके धनुष उठाया।

सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा। हर्ष विषादु न कछु उर आवा।

गुरुहि प्रनाम मन हि मन किन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लिन्हा॥

श्री सद्गुरुदेव के आदर और सत्कार में श्रीराम कितने विवेकी और सचेत थे, इसका उदाहरण जब उनको राज्योचित शिक्षण देने के लिए उनके गुरु वशिष्ठजी महाराज महल में आते हैं तब देखने को मिलता है। सद्गुरु के आगमन का समाचार मिलते ही सीताजी सहित श्रीराम दरवाजे पर आकर सम्मान करते हैं-

गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार जाय पद नावउ माथा॥

ॐ ॐ

महर्षि बोले- 'बछड़े बहुत दयालु होते हैं। वे स्वयं भूखे रहकर तुम्हारे लिए अधिक फेन गिरा देते होंगे। तुम्हारी यह वृत्ति भी उचित नहीं है।' अब उपमन्यु उपवास करने लगे। दिनभर बिना कुछ खाए गायों को चराते हुए उन्हें वन में भटकना पड़ता था। अंत में जब भूख असह्य हो गई, तब उन्होंने आक के पत्ते खा लिए। उन विषैले पत्तों का विष शरीर में फैलने से वे अंधे हो गए। उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था।

गायों की पदचाप सुनकर ही वे उनके पीछे चल रहे थे। मार्ग में एक सूखा कुआं था, जिसमें उपमन्यु गिर पड़े। जब अंधेरा होने पर सब गाएं लौट आईं और उपमन्यु नहीं लौटे, तब महर्षि को चिंता हुई। वे सोचने लगे- 'मैंने उस भोले बालक का भोजन सब प्रकार से बंद कर दिया। कष्ट पाते-पाते दुखी होकर वह भाग तो नहीं गया।' उसे वे जंगल में ढूँढने निकले और बार-बार पुकारने लगे- 'बेटा उपमन्यु! तुम कहां हो?'

उपमन्यु ने कुएं में से उत्तर दिया- 'भगवन्! मैं कुएं में गिर पड़ा हूं।' महर्षि समीप आए और सब बातें सुनकर ऋग्वेद के मंत्रों से उन्होंने अश्विनीकुमारों की स्तुति करने की आज्ञा दी। स्वर के साथ श्रद्धापूर्वक जब उपमन्यु ने स्तुति की, तब देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार वहां कुएं में प्रकट हो गए। उन्होंने उपमन्यु के नेत्र अच्छे करके उसे एक पदार्थ देकर खाने को कहा। किन्तु उपमन्यु ने गुरुदेव को अर्पित किए बिना वह पदार्थ खाना स्वीकार नहीं किया। अश्विनी कुमारों ने कहा- 'तुम संकोच मत करो। तुम्हारे गुरु ने भी अपने गुरु को अर्पित किए बिना पहले हमारा दिया पदार्थ प्रसाद मानकर खा लिया था।'

उपमन्यु ने कहा- 'वे मेरे गुरु हैं, उन्होंने कुछ भी किया हो, पर मैं उनकी आज्ञा नहीं टालूंगा।' इस गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर अश्विनी कुमारों ने उन्हें समस्त विद्याएं बिना पढ़े आ जाने का आशीर्वाद दिया। जब उपमन्यु कुएं से बाहर निकले, महर्षि आयोद धौम्य ने अपने प्रिय शिष्य को हृदय से लगा लिया।

● गुरु भक्त उत्तंक

महर्षि आयोद धौम्य के शिष्य महर्षि वेद ने अपने ब्रह्मचर्य आश्रम के जीवन में गुरु-गृह में अनेक कष्ट भोगे थे। उन कष्टों का स्मरण करके अपने यहां अध्ययन के लिए आने वाले किसी बालक को वे किसी कार्य में नियुक्त नहीं करते थे और न उनसे अपनी सेवा ही लेते थे। उनके शिष्यों में प्रधान थे उत्तंक। एक बार जब महर्षि वेद अपने आश्रम से किसी यात्रा पर जाने लगे, तब उन्होंने उत्तंक को अपनी अनुपस्थिति में अपना समस्त कार्य समहालने की आज्ञा दी। महर्षि वेद की पत्नी के मन में यह बात आई कि इस थोड़ी अवस्था के बालक पर उनके पतिदेव ने आश्रम का पूरा उत्तरदायित्व क्यों सौंपा। अतएव उन्होंने उत्तंक की परीक्षा लेने का विचार किया। ऋषिपत्नी ने कहा- 'उत्तंक! महर्षि ने जाते समय तुम्हें आज्ञा दी है कि उनकी अनुपस्थिति में उनके सभी कार्यों को सम्पन्न करो। मैं ऋतुमती हूं, अतः तुम्हें मेरे ऋतु को सफल करने का, महर्षि का कार्य भी पूरा करना चाहिए।'

उत्तंक ने थोड़ी देर विचार करके बड़ी नम्रता से प्रार्थना की- 'आप मेरे गुरुदेव की पत्नी हैं। आपकी आज्ञा से आपकी प्रसन्नता के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं, किन्तु माता! आप मुझे ऐसा अनुचित काम करने की आज्ञा न दें, यह पाप मैं नहीं कर सकूंगा।'

उत्तंक की दृढ़ श्रद्धा और संयम देखकर गुरुपत्नी प्रसन्न हो गई। जब महर्षि वेद लौटे तब उनकी पत्नी ने स्वयं उनसे सब बातें बताई क्योंकि उन्होंने तो उत्तंक की केवल परीक्षा लेना चाहा था। सब बातें सुनकर महर्षि ने उत्तंक को आशीर्वाद दिया- 'बेटा! तुम्हारी समस्त कामनाएं पूर्ण हों। तुम्हें समस्त ज्ञान स्वतः प्राप्त हो जाए।'

अब उत्तंक ने गुरुदेव को गुरुदक्षिणा देने की इच्छा प्रकट की। महर्षि ने गुरुपत्नी से पूछने को कहा। पूछने पर गुरुपत्नी ने बताया कि 'महर्षि के दूसरे शिष्य राजा पौष्य की पतिव्रता पत्नी के कानों में जो अमृतस्वावी कुण्डल हैं, उन्हें पर्व के अवसर पर मैं पहनना चाहती हूं।' पर्व का समय केवल चार दिन शेष था। उत्तंक राजा के पास वह कुण्डल मांगने चल पड़े। देवराज इंद्र ने देखा कि नागराज तक्षक बहुत दिनों से उन कुण्डलों को हरण करना चाहता है। राजा की पतिव्रता पत्नी के पास से कुण्डलों को लेने का तो उसमें साहस नहीं, पर यदि उत्तंक उन कुण्डलों को लेकर चले तो तक्षक किसी न किसी रूप में अवश्य कुण्डलों का हरण कर लेंगे। यद्यपि नागराज तक्षक इंद्र के मित्र हैं, किन्तु देवराज होने के कारण इंद्र को यह उचित जान पड़ा कि वे उत्तंक की सहायता करें। एक संयमी, तपस्वी, गुरुभक्त ब्राह्मण बालक यदि अपनी गुरुपत्नी को उनको मांगी दक्षिणा न दे सके तो उसे कितना खेद होगा, यह देवराज जानते थे और यह भी जानते थे कि उस समय उस तेजस्वी बालक के क्रोध को शांत करना सरल नहीं हो सकेगा। वह शाप देकर किसी भी लोकपाल को पदच्युत कर सकता है।

अतः इंद्र ने सहायता देने का उपाय पहले से निश्चित कर लिया। उत्तंक को राजा की पत्नी ने बड़ी श्रद्धा से अपने वे देवदुर्लभ कुण्डल दे दिए। छल करके तक्षक ने उस कुण्डलों को मार्ग में ही चुरा लिया, किन्तु इंद्र की सहायता से पाताल जाकर उत्तंक ने फिर कुण्डलों को प्राप्त किया और समय से पहले ही गुरुपत्नी को उन्हें अर्पित किया। जिसमें पूरा संयम और अटल गुरुभक्ति है, इसके निश्चय को भला त्रिलोकी में कोई भी व्यर्थ कैसे कर सकता है?

● संत कबीर

संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल 15 को कबीरजी काशी में लहरतारा तालाब के किनारे नीरू जुलाहे को मिले थे। इस विषय में ठीक पता नहीं है कि उस शिशु को वहाँ कौन छोड़ गया था। नीरू जुलाहे की स्त्री का नाम नीमा था। उसके कोई संतान नहीं थी। नीरू ने यही समझा कि भगवान ने ही उसे यह पुत्र दिया है। उसने बालक को लाकर अपनी स्त्री को दे दिया। दोनों ने बड़े प्रेम से कबीर का पालन पोषण किया।

एक दिन एक पहर रात रहते कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर सो गए। वे जानते थे कि स्वामी रामानंदजी जान-बूझकर एक जुलाहे के लड़के को शिष्य नहीं बनाएंगे। प्रतिदिन की भाँति अंधेरे में ही स्वामी रामानंदजी गंगा स्नान करने आए। उनका पैर सीढ़ी पर सोते कबीर की छाती पर पड़ा तो राम-राम बोल उठे। कबीर ने इसी को गुरु मन्त्र मान लिया।

कबीरजी की पत्नी का नाम लोइ था। उनका कमल नामक पुत्र तथा कमाली नामकी एक कन्या थी। अपने परिवार का पालन कबीर करघे पर कपड़ा बुनकर और उसे बाजार में बेचकर करते थे। साधु-संतों की सेवा उनके घर के सभी लोग करते थे।

25 वर्ष की अवस्था में नरेंद्र दत्त ने गेरुआ वस्त्र पहन लिए। तत्पश्चात उन्होंने पैदल ही पूरे भारतवर्ष की यात्रा की।

सन् 1893 में शिकागो (अमेरिका) में विश्व धर्म परिषद् हो रही थी। स्वामी विवेकानंदजी उसमें भारत के प्रतिनिधि के रूप से पहुँचे। योरप-अमेरिका के लोग उस समय पराधीन भारतवासियों को बहुत हीन दृष्टि से देखते थे। वहाँ लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि स्वामी विवेकानंद को सर्वधर्म परिषद् में बोलने का समय ही न मिले। एक अमेरिकन प्रोफेसर के प्रयास से उन्हें थोड़ा समय मिला किंतु उनके विचार सुनकर सभी विद्वान चकित हो गए।

फिर तो अमेरिका में उनका बहुत स्वागत हुआ। वहाँ इनके भक्तों का एक बड़ा समुदाय हो गया। तीन वर्ष तक वे अमेरिका रहे और वहाँ के लोगों को भारतीय तत्वज्ञान की अद्भुत ज्योति प्रदान करते रहे।

‘अध्यात्म-विद्या और भारतीय दर्शन के बिना विश्व अनाथ हो जाएगा’ यह स्वामी विवेकानंदजी का दृढ़ विश्वास था। अमेरिका में उन्होंने रामकृष्ण मिशन की अनेक शाखाएँ स्थापित कीं। अनेक अमेरिकन विद्वानों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

4 जुलाई सन् 1902 को उन्होंने देह त्याग किया। वे सदा अपने को गरीबों का सेवक कहते थे। भारत के गौरव को देश-देशांतरों में उज्ज्वल करने का उन्होंने सदा प्रयत्न किया।

● स्वामी दयानन्द

स्वामी विरजानन्दजी की पूण्यकीर्ति सुनकर उनके दर्शन करने की और उनसे आर्ष ग्रंथों का अभ्यास, वैदिक अमृत का पान करने की तीव्र जिज्ञासा स्वामी दयानन्द के अंदर जाग उठी। वे मथुरा में स्थित दण्डी स्वामी विरजानन्दजी की कुटिया पर पहुंचे। दण्डीजी का सामान्य नियम था कि पढ़ाने के अतिरिक्त समय में वे अपना द्वार बंद रखते थे। केवल दर्शनार्थियों से मिलना उन्हें पसंद न था।

दयानन्द ने धीरे से दरवाजा खटखटाया। अंदर से प्रश्न हुआ- ‘कौन है?’ ‘मैं कौन हूँ यही जानने के लिए आपकी शरण में आया हूँ।’ -दयानन्द ने विनयपूर्वक कहा। ‘क्या कुछ पढ़े भी हो?’ दयानन्द ने जो कुछ पढ़ा था वह सब कह सुनाया फिर भी दरवाजा न खुला।

भीतर से आवाज आई। ‘आज तक जो कुछ तुमने पढ़ा है वह सब भुला दो। जब तक मनुष्य प्रणीत ग्रंथों का प्रभाव तुम्हारे हृदय पटल पर रहेगा तब तक तुम्हारे चित्त में आर्ष ग्रंथों का प्रभाव प्रवेश न कर सकेगा। यदि तुम्हारे पास ऐसे ग्रंथ हों तो उन्हें भी यमुना में डाल आओ।’

पढ़ी हुई विद्या को फेंकना कितना दुष्कर है। किन्तु दयानन्द विलक्षण पुरुष थे। अपनी सभी पुस्तकें उन्होंने यमुना में डाल दीं और पुराने पढ़े को विस्मृत कर हृदय पटल को स्वच्छ कर दिया।

गुरुदेव की कुटिया का दरवाजा खुल गया। उन्हीं के कृपा प्रसाद से स्वामी दयानन्द ने हिंदूजाति को आडम्बर और भ्रमजाल से निकाला तथा वेदों के ज्ञान को नए सिरे से प्रकाशित किया।

ॐ ॐ

धन्य है गुरुचरणों में अपनी मान्यताएं अर्पण कर देने वाले ऐसे शिष्यों को!

● बाबा फरीद

पाकिस्तान में बाबा फरीद नाम के एक फकीर थे। उनकी गुरुभक्ति अनन्य थी। गुरुजी की सेवा में ही उनका सारा समय व्यतीत होता था।

एक बार उनके गुरु ख्वाजा बहाउद्दीन ने उनको किसी खास काम के लिए मुलतान भेजा। वहां उन दिनों में शाह शम्सतबरेज के शिष्यों ने अपने गुरु के नाम का एक दरवाजा बनाया था और घोषणा की थी कि आज इस दरवाजे से जो गुजरेगा वह जरूर स्वर्ग में जाएगा। हजारों फकीर और गृहस्थ आज इस दरवाजे से गुजर रहे थे। नश्वर शरीर का त्याग होने के बाद स्वर्ग में स्थान मिलेगा ऐसी सबको आशा थी। फरीद को भी उनके मित्र फकीरों ने दरवाजे से गुजरने के लिए खूब समझाया, परन्तु फरीद तो उनको जैसे-तैसे समझा-पटाकर अपना काम पूरा करके, बिना दरवाजे से गुजरे ही अपने गुरुदेव के चरणों में पहुंच गए।

सर्वान्तर्यामी गुरुदेव ने उनसे मुलतान के समाचार पूछे और कोई विशेष घटना हो तो बताने के लिए कहा। फरीद ने शम्सजी के दरवाजे का वर्णन करके सारी हकीकत सुना दी।

गुरुदेव बोले- 'मैं भी वहां होता तो उस पवित्र दरवाजे से गुजरता। तुम कितने भाग्यशाली हो फरीद कि तुमको उस पवित्र दरवाजे से गुजरने का सुअवसर प्राप्त हुआ!'

सद्गुरु की लीला बड़ी अजीबोगरीब होती है। शिष्य को पता नहीं चलता और वे उसकी कसौटी कर लेते हैं। फरीद तो सत्शिष्य थे। उनको अपने सद्गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति थी। गुरुदेव के शब्द सुनकर वे बोले- 'कृपानाथ! मैं तो उस दरवाजे से नहीं गुजरा। मैं तो केवल आपके दरवाजे से ही गुजरूंगा। एक बार मैंने आपकी शरण ली है तो अब और किसी की शरण मुझे नहीं जाना है।'

यह सुनकर ख्वाजा बहाउद्दीन की आंखों में प्रेम उमड़ आया। शिष्य की दृढ़ श्रद्धा और अनन्य शरणागति देखकर उसे उन्होंने छाती से लगा लिया। उनके हृदय की गहराई से आशीर्वादात्मक शब्द निकल पड़े- 'फरीद! शम्सतबरेज का दरवाजा तो केवल एक ही दिन खुला था, परन्तु तुम्हारा दरवाजा तो ऐसा खुलेगा कि उसमें से जो हर गुरुवार को गुजरेगा वह सीधा स्वर्ग में जाएगा।'

आज भी पश्चिमी पाकिस्तान के पाक पट्टन कस्बे में बने हुए बाबा फरीद के दरवाजे में से हर गुरुवार को गुजरकर हजारों यात्री अपने को धन्यभागी मानते हैं। यह है गुरुदेव के प्रति अनन्य निष्ठा की महिमा।

धन्य हैं ऐसे बाबा फरीद जैसे सत्शिष्यों को कि जिन्होंने सद्गुरु के हाथों में अपनी जीवन की बागडोर हमेशा के लिए सौंप दी और निश्चित हो गए।

● महात्मा सुकरात

यूनान (ग्रीस) देश में ईसा मसीह से पूर्व पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुप्रसिद्ध तत्वज्ञानी सुकरात का जन्म हुआ था। उस समय यूनान में सूफी मत के लोगों की प्रधानता थी। मत कोई भी हो, जब उसमें कोरा तर्कजाल बढ़ जाता है, संयम-सदाचार आदि जब नहीं रहते और केवल बुद्धि के बल पर नाना प्रकार के शब्द-जाल फैलाए जाते हैं, तब वह मत सत्य से दूर हो जाता है। उसमें दम्भ ही बचा रहता है। उस समय सूफी मत की लगभग यही दशा यूनान में थी। परमार्थ-सत्ता के संबंध में लोगों का भ्रम दूर हो, लोग उस सर्वात्मा के संबंध के व्यापक रूप से परिचित हों- इस विचार से सुकरात ने उपदेश देना प्रारंभ किया।

सुकरात के उपदेशों में दो बातें मुख्य थीं- एक तो 'मनुष्य अल्पज्ञ है' यह वे कहा करते थे। उनका कहना था- 'मैं जो कुछ जानता हूँ, वह यही है कि मैं कुछ नहीं जानता।' दूसरे वे आत्मा की व्यापकता का अपने उपदेशों में प्रचार करते थे। सादा जीवन और छलहीन व्यवहार- यही सुकरात की मुख्य शिक्षा है।

'एकमात्र आत्मा की उपासना करनी चाहिए।' सुकरात के इस उपदेश से यूनान में प्रचलित उस समय की प्रथा पर बड़ा धक्का लगता था। इसलिए सुकरात पर यह दोष लगाया गया कि वे यूनान के लोगों में कुविचार और निरिश्वरवाद का प्रचार करते हैं। उन्हें मृत्युदंड दिया गया। उनके पास विष का प्याला भेजकर आज्ञा दी गई कि उसे पी लें।

सुकरात के शिष्य और उनसे स्नेह करने वाले दूसरे लोग व्याकुल हो गए। किंतु सुकरात आत्मज्ञानी थे। उन्हें शरीर का मोह नहीं था। शरीर नाशवान है और आत्मा अमर है, इस बात को वे भली प्रकार जानते थे। विष के प्याले को लेकर हँसते-हँसते उन्होंने विष पी लिया। स्वयं डरने के बदले वहाँ जो लोग थे, उन्हें सुकरात ने समझाया।

विष ने उनके शरीर को अवश्य कष्ट दिया किंतु सुकरात तो अमर ही हैं। उनके उपदेशों को अब भी बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। यूनान के लोग अब इस बात पर गर्व करते हैं कि सुकरात का जन्म उनके देश में हुआ था।

ॐ

मोक्ष का द्वार : गुरु

-प.पू. संत श्री आसारामजी बापू

(उत्तरायण की ध्यान योग शिविर में साधकों के समक्ष पूज्य श्री के श्रीमुख से प्रवाहित
गुरुभक्ति की भावगंगा:)

गुरुप्रसाद से जिनका अंतर शुद्ध हो चुका है, बाह्य शुद्धी उनके समक्ष दासी बन जाती है। अंतर में यदि गुरु की सेवा हो और गुरु प्रसाद का मूल्य समझ में आ चुका हो तो उस साधक अथवा शिष्य को अन्य किसी शुद्धि की चिंता नहीं करनी चाहिए। वह जो भी करेगा, वह शुद्ध हो जाएगा, जो कुछ खाएगा वह पवित्र हो जाएगा। जो गुरुभक्त है, गुरु की पवित्र सेवा में जिसका तन और मन यज्ञरूप बन गया है उसे कोई दोष नहीं लगता। उसके लिए सभी क्षम्य हैं।

जिसके हृदय का अधिकार गुरुभक्ति ने ले लिया है उसे तीर्थाटन से क्या काम? उसे मंदिरों में जाने की क्या आवश्यकता? उसका मन ही मंदिर बन जाता है, उसका तन शिवालय बन जाता है। जिसके मन पर गुरुत्व ने अधिकार जमा लिया है वह स्वयं ही चलता-फिरता एक तीर्थधाम बन जाता है। ज्ञानेश्वर जैसे, एकनाथ, एकलव्य, तोटकाचार्य जैसे सद्पात्र शिष्य सत् शिष्यों को याद करने से, उनके नाम का स्मरण करने से, उनकी कथाओं का पुनरावर्तन करने से आज भी हजारों लोग पवित्र हो जाते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज की गुरुभक्ति सुनकर अच्छे से अच्छे संत, प्रगल्भ वक्तागण तथा उत्तम प्रकार के गुरुभक्त भी द्रवित हो जाते हैं। वे ज्ञानेश्वर महाराज धन्य हैं। उनका अंतःकरण धन्य है जो गुरुत्व को झेल सका, गुरुत्व को समझ सका अन्यथा बाह्य शुद्धि, बाहरी समझ तो ऐसी होती है मानो विष पर चाशनी का लेप, जैसे पेट क्षुधा पीड़ित हो और बाहर पेट का अन्न लेप कर दिया जाए। भीतर यदि काम, क्रोध, लोभ, राग और द्वेष की अग्नि हो तो बाह्य शुद्धि, पवित्रता व्यर्थ हो जाती है। गुरुभक्ति से भीतरी विकार नष्ट हो जाते हैं। गुरुसेवा से तन पवित्र हो जाता है। गुरु के कृपा कटाक्ष से मन पवित्र हो जाता है।

भागवत पुराण में भगवान वेद व्यास ने कहा है :

ॐ ॐ

यदि काम पर जय प्राप्त करनी हो तो देह की नश्वरता पर विचार करो। मृत देह को देखो, शव पर विचार करो व रोगी शरीरों की हालत देखो। लोभ को जीतना हो तो कमाए हुए धन का दान करो और मोह को पराजित करना हो तो विवेक से काम लो। अहंकार को विजित करना हो तो अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति को देखो। धन के अहं को जीतने के लिए अपने से अधिक धनी को देखो। विद्या के अहं को जीतना हो तो अपने से बड़े विद्वान को देखो। अपनी बुद्धि और चालाकी का अधिक गुमान हो तो अपने से अधिक चालाक लोगों में रहो। परंतु इन सब प्रयासों से दूर, जिसे सद्गुरु की प्राप्ति हो गई, जिसे गुरुभक्ति रूपी संजीवनी मिल गई उसे काम दूर करने के लिए अलग से कोई उपाय नहीं करना पड़ता, क्रोध दूर करने के लिए भी कोई अतिरिक्त उपाय करना आवश्यक नहीं।

अविद्वत्ता दूर करनी हो तो विद्यालयों में जाइए, अनपढ़ हों तो अध्यापकों की दासता स्वीकारिए। परंतु जिसने गुरुदेव की दासता प्राप्त कर ली वह अनपढ़ होते हुए भी विद्वानों को पढ़ाता है, नासमझ होते हुए भी समझदारों को समझाने की क्षमता रखता है। क्योंकि :

नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।

शिष्य का यह कर्तव्य होता है कि गुरुसेवा में अपना सर्वस्व लुटा दे। गुरु का स्वभाव ही होता है कि वह संप्राप्त आध्यात्मिक पूँजी का अपना संपूर्ण कोष शिष्य के हृदय में उड़ेल दे। इसके बावजूद भी उसकी पूँजी में कोई अभाव नहीं आ पाता।

जिस शिष्य में गुरु के प्रति अनन्य भाव नहीं जागता वह शिष्य आवारा पशु के समान ही रह जाता है। उसकी हालत धोबी के कुत्ते जैसी है, न घर का न घाट का। उसके मन को पूर्ण विकसित हो पाने का अवसर नहीं मिलता। अधिक भटकने से उसका मन नास्तिक भाव में जाता है और वह खिन्नता अनुभव करने लगता है। पर जिसे सद्गुरु मिल गए हैं और जो सद्शिष्य बन सका है उसके लिए परमात्मा के प्रेमप्रभाव का झरना फूट निकलता है। गुरुकृपा, गुरुप्रसादी जब हृदय में प्रविष्ट होती है तब- अ...हा...हा...!! गुरुप्रसादी क्या वस्तु होती है यह यदि जानना हो तो किसी गुरुभक्त के हृदय में झाँककर देखिए, गुरुप्रसाद का स्वाद क्या होता है यह यदि जानना हो तो किसी सत्शिष्य के हृदय में झाँककर देखिए, तब आपको पता चलेगा। देवतागण तो उस अमृत से वंचित रहते हैं जो अमृत गुरुभक्त को मिलता है। जिसे गुरुभक्त गुरुभक्ति से संप्राप्त कर पीता है। उस अमृत से योगीजन भी वंचित रहते हैं। कर्मी ॥ इस अमृत से बहुत दूर रह जाते हैं। कर्मी

कर्मकांड की शुद्धि में तो लगे रहते हैं परंतु हृदय की शुद्धि परम भाव से प्राप्त होती है, भाव के बिना वह संभव नहीं है। उससे वे वंचित रह जाते हैं।

तीर्थों में स्नान करने से एक फल मिलता है परंतु यदि कोई गुरुभक्त मिल जाए और उसके सान्निध्य में रहें तो चार फल मिलते हैं। गुरुभक्त के सान्निध्य मात्र से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों के दरवाजे खुल जाते हैं। किसी गुरुभक्त से मित्रता करके देखिए। वह आपको धर्म के मार्ग पर ले जाएगा। उसका स्वभाव ही होता है कि वह आपको धार्मिक बनाकर ही छोड़ेगा। आपको दूँठ नास्तिक न रहने देगा। सच्चा गुरुभक्त आपको मिले तो धर्म का द्वार ही खोल दे।

सच्चा गुरुभक्त ही संतत्व को प्राप्त होता है। संतो जैसा वेश बनाकर बैठ जानेवाले संतत्व को प्राप्त नहीं होते।

तीर्थ नहाए एक फल, संत मिले फल चार ।

सत्गुरु मिले अनंत फल, कहे कबीर विचार ॥

ऐसे कोई संत मिल जाएँ ... ! ऐसे गुरुभक्त मिल जाएँ ... ! तो? हमें समझ में आएगा कि हम अब तक तो धुँआ ही चाट रहे थे, पानी बिलो रहे थे मक्खन निकलेगा, हीरों की धुन में पत्थर चुनकर लादे व्यर्थ का भार उठाए फिर रहे थे। ऐसे किसी विरले से भेंट होते ही कर्मकांडियों के तो होश ही उड़ जाएँगे।

परमहंस रामकृष्णदेव की परीक्षा लेने एक पंडित आए। रामकृष्ण की मस्ती देखकर वे तो चकित हो उठे, उनका ईश्वरीय आनंद देखकर वापस लौटते हुए उन्होंने रामकृष्णजी के शिष्यों से गदगदकंठ होकर कहा :

‘गाड़ियाँ भरी जा सके इतने ग्रंथों का अध्ययन मैंने किया है पर आज जाना कि मैं तो व्यर्थ बोझ उठाए हूँ। अमृत तो आपके रामकृष्णजी पी रहे हैं और उनकी कृपाप्रसादी का स्वाद आप लोग पा रहे हैं। हम तो मस्तिष्क में बोझा भरे हुए पंडित हो गए हैं।’

पुस्तकें पढ़-पढ़कर गुरु बन जाने में कोई सार नहीं। ऐसे निगुरे गुरुओं की कोई आवश्यकता नहीं। आजकल समाज में ऐसे पुस्तिका गुरुओं की बड़ी भारी भीड़ हो गई है।

कोई सद्गुरु का प्यारा मिल जाए तो चारों पुरुषार्थ का द्वार खुल जाए। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के द्वारों का क्या मजाल है कि वे बंद रहें? जब कोई सद्गुरु का प्यारा आपका हाथ पकड़ ले तो निश्चित जानिएगा कि आपके लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के द्वार बंद नहीं रह सकते। सत्शिष्य का सान्निध्य इतना लाभ पहुँचा सकता है और जब यह सत्शिष्य सद्गुरु बन जाता है तब उसमें अनंत फल देने की सामर्थ्य उद्भूत हो जाती है। ज्ञानेश्वर महाराज सत्शिष्य में से सद्गुरु बने थे। कबीर साहब सत्शिष्य में से सद्गुरु हो गए थे। इसी प्रकार नानकदेव तथा विवेकानंद सत्शिष्य में से सद्गुरु हुए थे।

सत्शिष्यों की पावन कथाएँ अपने हृदय को जितना पावन करती हैं, हमें जितना पुण्य प्रदान करती हैं इतना पुण्य तो गंगास्नान से भी नहीं मिलता। सद्गुरुओं और सत्शिष्यों की चर्चा हमें जितना अमृत पिला सकती है इतना अमृत पिलाने की शक्ति स्वर्ग के घड़े में कहाँ है? स्वर्ग का सुख और स्वर्ग का अमृत ऐसा कहाँ है? सत्शिष्यों और सद्गुरुओं की गाथाएँ सुनने से, समझने से जो रस मिलता है, अमृत बरसता है वह स्वर्ग के अमृत को लज्जित कर देता है। स्वर्ग का अमृत यहाँ आकर निरर्थक सिद्ध होता है। देवताओं के अमृत को तुच्छ सिद्ध करने की सामर्थ्य सद्गुरु और सत्शिष्य की गाथाओं में समाई हुई है।

जिनका हृदय सद्गुरु के श्रीचरणों में द्रवित हो चुका है, जिनके हृदय में सद्गुरु प्रविष्ट हो गए हैं वे लोग सद्भागी हैं। वे उस प्राप्ति में पागल हैं।

पागल अर्थात् -

जिन्होंने 'गल' को पा लिया, इस अटकल को पा लिया है कि मस्ती कैसी ली जाती है, जिन्होंने इस बात को समझ लिया है कि अमृत कैसे लूटा जाता है।